अध्याय बयालीसवाँ

॥श्री गणेशाय नम:॥ श्री सरस्वत्यै नम:॥ श्री सिद्धारूढ़ाय नम:॥

"जो स्वयं का देहाभिमान त्यागकर सभी प्राणियों में हमेशा गुरु रूप देखता है तथा उस रूप को प्रणाम करता है, ऐसा मुमुक्षु स्वयं ब्रह्म पद तक पहुँचता है और ब्रह्म ही हो जाता है।"

श्री सिद्धारूढ़ महाराजजी, मैं आप की शरण में आया हूँ तथा मेरा यह शरीर आप के चरणों में न्यौछावर करके मैं उपकृत हो गया हूँ। एक क्षण भर भी अगर आप की संगति प्राप्त हो जाने से भव भय भंजन होता है, अंत:करण में निर्मल ज्ञान जगकर ब्रह्म सर्वगत होने की प्रतीति होती है। इस प्रकार क्रमश: ज्ञान प्राप्ति कैसी होती है यह मैं आप को उदाहरण के साथ बयान करता हूँ, क्योंकि दृष्टांत दिए बगैर किसी भी बात की मनुष्य को प्रतीति या अनुभव नहीं आता।

दक्षिण देश में स्थित मुक्तापुर नाम के एक गाँव में एक वैराग्य पूर्ण ब्राह्मण जोड़ा रहता था। उस जोड़े के घर के पास ही एक श्रीकृष्ण का मंदिर था, दोनों प्रतिदिन उनकी इष्टदेवता होने वाले कृष्ण का प्रेम पूर्वक भजन करते थे, उनके मन में घर गृहस्थी की चिंता कभी भी नहीं थी। उनके पाँच पुत्र थे, जिनमें से दूसरा पुत्र शंकर बचपन से प्रतिदिन आदर पूर्वक पुराण कथा सुनने के लिए मंदिर जाता था। भगवान श्रीकृष्ण ने ज्ञानेश्वर महाराज (श्री ज्ञानेश्वर महाराज यह तेरहवे शताब्दी के प्रख्यात संत थे; उन्होंने आयु के सोलहवे वर्ष में श्रीमदभगवतगीता का मराठी में भाषांतर किया, उन्हें विष्णु का अवतार समझा जाता है) के अवतार में लिखा हुआ "ज्ञानेश्वरी" ग्रंथ पढ़कर जब कीर्तनिया ने शंकर को उसका अर्थ समझाया, तब एकांत में शंकर ने भगवान श्रीकृष्ण से उसका ज्ञान दाता होने की विनम्रता से प्रार्थना की। आगे चलकर उपजीविका अर्जित करने की विविध विद्याएँ प्राप्त होने के कारण उसे कृष्ण भक्ति का विस्मरण हुआ; उसपर उसका विवाह होकर पत्नी घर आई और घर गृहस्थी में पूर्ण रूप से व्यस्त होने के कारण आसक्ति भी प्रतिदिन बढ़ती ही गयी। कामधाम तथा व्यवहार में अत्यंत चतुर होने के कारण उसे जल्द धन प्राप्त होता था, इसलिए समाज में उसे बहुत मानसम्मान मिल गया, अर्थात्, उसी में वह पूर्ण रूप से उलझ गया। उसके पश्चात उसे एक सुंदर पुत्र हुआ, जिसके

कारण उसे अत्यंत आनंद हुआ; उसके उपरांत जो कुछ हुआ उसे ध्यान से सुनिए।

उसका पुत्र जब छह महीनों का हुआ था, तब एक रात शंकर के सपने में एक संन्यासी आया और आग बरसाती हुई आँखों से उसने शंकर की ओर देखा। उसपर तुरंत वह संन्यासी अंतर्धान हुआ। तत्काल शंकर जग गया। उठते ही वह रोने लगा और "हरि, हरि, हरि" कहते कहते देहभान खो बैठा। घर के सदस्य अचानक भयभीत हो गए और उसे मंदिर ले गए; वहाँ जाकर कृष्ण की मूर्ति को देखकर वह अधिक रोने लगा। लगभग तीन घंटे वह उसी प्रकार रोता रहा। उसके पश्चात देहभान प्राप्त होने के उपरांत उसके मन में पूर्ण रूप से बदलाव आ चुका था। मन ही मन, उसकी पत्नी और पुत्र के साथ उसका संबंध पूर्ण रूप से खतम हो गया था। उस समय उसे लगा की इस जगत में मेरा अपना कोई भी नहीं है, फिर उसने सोचा की किस लिए वह घर गृहस्थी करता रहें? तत्काल सतगुरुजी की खोज करनी चाहिए। मन ही मन इस प्रकार के विचार करते समय उसे कुछ वर्षों पहले बचपन में घटी हुई एक घटना का स्मरण हुआ| उस समय एक वृद्धा ने हुबली में सिद्धारूढ़ स्वामीजी नाम के एक महान तत्वज्ञानी साधु को देखने की बात उसे बतायी थी; शंकर को इस समय उस बात का स्मरण हुआ। उस महान सतगुरुजी से भेंट करने के लिए जाना ही चाहिए, ऐसा मन ही मन निश्चय करके शंकर घर में किसी को कुछ भी बताए बगैर पूर्व दिशा की ओर निकल पड़ा। घर के सदस्य बहुत खोज करके अंत में उसे घर ले आए, परंतु उसने उन्हें कहा, "मैं किसी भी हालत में हुबली जाकर सिद्धारूढ़जी से मिल के ही रहूँगा।" उसका दृढ़ निश्चय देखकर घर के सदस्यों ने, उसे उसके एक मित्र के साथ हुबली भेज दिया।

हुबली में स्थित सिद्धाश्रम पहुँचकर शंकर ने सिद्धारूढ़जी को प्रेम पूर्वक प्रणाम किया। उसपर उसने सारा वृत्तांत उन्हें बताया तथा घर गृहस्थी करते रहने की उसे इच्छा न होने के कारण, परमार्थ किस प्रकार प्राप्त करना चाहिए यह पूछा। सतगुरुजी ने कहा, "तुम नामस्मरण करते जाओ| तुम्हें ध्यान धारणा करने का अधिकार है तथा कुछ समय के पश्चात तुम ज्ञान के भी अधिकारी बनोगे!" ऐसे अमृततुल्य शब्द सुनकर शंकर मन ही मन नि:शंक तथा सुखी हो

गया। सतगुरुजी के बोल उसने स्मरण किये और अपने गाँव लौटने के पश्चात घर गृहस्थी के सारे धर्म कर्म छोड़कर वह जंगल जाकर बैठ गया। घरवालों ने उसके लिए वहीं एक झोंपड़ी बनवाई; उस झोंपड़ी में रहकर वह दिनरात सतगुरुजी का चिंतन करता था। वह स्वयं चावल पका लेता था तथा जिह्वालौल्य की पूर्ती न हो इसलिए चावल में पानी मिलाकर सानकर "सिद्धार्पण" कहकर खा लेता था। प्रतिदिन एकांत में बैठकर नामस्मरण करते रहने के कारण उसका मन निर्मल होकर भेद की भावना नष्ट हो गयी। एकबार जब वह भोजन कर रहा था, तब अचानक एक काला कुत्ता झोंपड़ी में घुस गया; शंकर ने तत्काल उठकर उसे प्रणाम किया। तत्काल झट से कुत्ते ने शंकर जिस थाली में भोजन कर रहा था, उसी थाली में मुँह मारा और चैन से चावल खाने लगा। उसे सतगुरुजी का प्रसाद समझकर शंकर भी उस कुत्ते के साथ भोजन करने लगा। भोजन करने के पश्चात शंकर ने उसे प्रणाम किया| वह कुत्ता वहीं रहने लगा। कुत्ता विष्ठा अथवा मैल खाता हुआ देखते ही, शंकर अपने हाथों से उसका मुँह धोकर उसे साथ लेकर भोजन करता था| इस प्रकार प्रतिदिन करने के कारण उसके अभिमान का निरसन हो गया, देहबुद्धि खतम हो गयी तथा सतगुरुजी प्रति प्रेम भावना से मन भर गया। "जो प्राणियों को वंदन करता है, वही अनंत को प्राप्त करता है।" संत तुकारामजी के इस दोहे के शब्दानुसार व्यवहार करने का उसने निश्चय किया था। इस संदर्भ में भागवत पुराण कथा में दिया हुआ तथा इस प्रकार की साधना को पुष्टि देने वाला एक श्लोक अवश्य सुनिए। (श्लोक) "विसृज्य स्मयमानान् स्वान दृशं व्रीडां च दैहिकम् ॥ प्रणमेद्दंडवत् भूमौअश्वचांडालगोखरान ।।१॥ (अर्थ) अपने रिश्तेदार, बंधु मित्र इन सभी के सामने हमें किसी को भी प्रणाम करते समय लज्जा आती है; परंतु देहबुद्धि के कारण निर्मित इस लज्जा को छोड़कर घोड़ा, चांडाल, गाय तथा गधा आदि को देखकर उन्हें साष्टांग प्रणाम करना चाहिए। शंकर ने विचार किया की अगर उसे इस प्रकार की उपासना करनी हो, तो जंगल में रहना योग्य नहीं होगा, इसलिए वह केवल एक लँगोटा धारण करके गाँव की ओर निकल पड़ा। गाँव के मार्ग में जो भी मित्र या उसकी इज्जत करने वाले लोग, महिला, बच्चे आदि मिलते ही, उन सभी को प्रणाम करते हुए वह जाने लगा। उसकी ऐसी

करनी देखकर लोग उसे पागल कहने लगे; गाँव की औरते उसे देखकर भाग जाने लगी और सभी कहने लगे, "बेचारा, पहले ठीक ठाक ही था, अब किसी कारण से उसकी पागलों जैसी स्थिति हो गयी है।" परंतु इन लोगों में कुछ साधु सज्जन भी थे, जिन्होंने उसकी यह पारमार्थिक उपासना है यह समझकर, उसपर गुरु कृपा होने से वह धन्य हो गया है ऐसा कहने लगे। उन्होंने आगे कहा, "शंकर के मन में निर्मित यह वृत्ति, उसपर गुरु कृपा होने से ही हुई है तथा जल्द ही वह ज्ञान प्राप्ति का भी अधिकारी हो जाएगा इस में कोई संदेह नहीं है।" उसके पश्चात शंकर गाँव के समीप होने वाले एक पहाड़ पर जाकर रहने लगा; प्रतिदिन उसकी पत्नी वहाँ तक जाकर उसे भोजन देती थी। इस प्रकार अविरत एकांत में रहकर सतगुरुजी के भजन में तल्लीन होने के उपरांत एक दिन सतगुरुजी ने उसके मन में प्रकट होकर उसे प्रेरणा दी। "सतगुरुजी की आज्ञा होने के कारण अब तुरंत हुबली जाना होगा।" ऐसा कहकर शंकर बरसात की एक मध्यरात्रि घने अंधेरे में हुबली के लिए निकल पड़ा, देखा जाए तो सतगुरुजी उसके हृदय में ही स्थित होने के कारण, वे हमेशा उसके समीप ही थे। मार्ग में आड़े आए नदी को बाढ़ आई थी। शंकर ने कहा, "हे सतगुरुमहाराजजी, यह शरीर आप पर न्यौछावर कर दिया है, आप ही उसकी रक्षा करने वाले हैं," ऐसा कहकर आगेपीछे कुछ विचार किए बिना सतगुरुजी का मन ही मन चिंतन करके, सीधे नदी के बहते प्रवाह में उसने छलांग मारी।

उस जोरदार प्रवाह में बहकर जाते हुए उसने कहा, "हे सतगुरुजी, आप ने नदी का रूप धारण किया है तथा फिलहाल मैं आप के पेट में हूँ, इसलिए अब मुझे आप में एकरूप कर दीजिए," उसकी यह प्रार्थना सुनते ही सतगुरुजी अचानक वहाँ प्रकट हुए। तेज:पुञ्ज सतगुरुजी नदी के प्रवाह पर बैठे हुए शंकर को दिखाई पड़े, तत्क्षण वे शंकर का हाथ पकड़कर उसे परले किनारे ले गए। किनारे पहुँचते ही सतगुरुजी ने शंकर को वहाँ छोड़ा, शंकर ने उनके चरण छू लिए और कहा, "हे गुरुवर्य, आप यहीं रहिए। अब मुझे छोड़कर मत जाईए।" सिद्धजी ने कहा, "अरे, मैं तुम से भिन्न नहीं हूँ। जब तुम मेरा रूप ही सभी प्राणियों में देखते हो, तब तुम मुझ से भिन्न कैसे हो सकते हो? थोड़ी भी चिंता मत करना, सीधा हुबली चले जाओ। वहाँ जाने के पश्चात तुम कुछ समय तक

मेरे संगति में रहोगे।" ऐसा कहकर एक क्षण में वे अंतर्धान हो गए। गुरुमहाराजजी का चिंतन करते हुए शंकर आगे चल पड़ा। अन्न प्राप्ति के लिए भी रुके बिना दो दिन लगातार चलता रहने के कारण उसके दोनों पाँव सूज गए और वह एक धर्मशाला में लेटा रहा। दो दिन पेट में भोजन का एक दाना भी न होने के कारण उसके शरीर में बिलकुल शक्ति नहीं थी। ऊपर से पाँव सूजने के कारण वह हिल भी नहीं सकता था, परंतु ऐसी स्थिति में भी उसने सतगुरुजी नामस्मरण नहीं छोडा था। अपने भक्त पर आए संकट को देखकर, अवर्णनीय तथा करुणाकर सतगुरुजी वहाँ एक ब्राह्मण के रूप में प्रकट हुए। अनाथ शंकर को देखकर, दयासागर होने वाले उस ब्राह्मण की आँखों में आँसू आ गए, उसने शंकर से कहा, "तुम्हारी देखभाल करने वाला यहाँ कोई भी नहीं दिखाई पड़ रहा है, इसलिए अब तुम्हारी क्या आस है, यह तुम मुझे बताओ।" शंकर ने कहा, "मैं हुबली जाकर गुरु चरणों की अविरत सेवा करना चाहता हूँ।" ब्राह्मण ने कहा, "अरे भाई! तुम्हारे पाँव सूज गए हैं तथा भोजन न मिलने के कारण तुम निर्बल हो चुके हो। ऐसी हालत में तुम हुबली कैसे जाओगे? तुम्हे कुछ समय के लिए यहीं रहना होगा।" उसके उपरांत उस ब्राह्मण ने तेल लाकर शंकर के दोनो पैरों की तेल लगाकर अच्छी तरह से मालिश की तथा प्रतिदिन दोनों समय उसके लिए भोजन लाकर देने लगा। इस प्रकार की प्रेम पूर्वक सेवा के कारण तीन दिनों में शंकर के पैर ठीक हो गए तथा उसका शरीर भी सशक्त हो गया, उसके उपरांत उस ब्राह्मण ने शंकर को कुछ पैसे दिए। परंतु शंकर ने पैसे लेने से इन्कार किया और कहा, "कृपा करके आप मुझे पैसे का लालच मत दिखाईए। आप ने मुझ पर अनंत उपकार किए हैं, आप के उपकार मैं कैसे भूलु? अब मैं हुबली जा रहा हूँ| आप ही मेरे माँ बाप बन गए हैं। मुझे तो ऐसा लग रहा है की आप ही मेरे सतगुरुजी होंगे।" ऐसा कहकर उसने ब्राह्मण के चरण छू लिए। ब्राह्मण ने कहा, "आज तुम मेरे साथ चलो। मैं तुम्हें रेलगाड़ी में बिठाता हूँ।" ऐसा कहकर उसका हाथ पकड़कर ब्राह्मण ने उसे रेलगाड़ी में बिठाया।

उसके पश्चात शंकर हुबली आकर पहुँचा और उसने मठ जाकर सतगुरुजी से भेंट की। सतगुरुजी को देखते ही उनके प्रति प्रेम उमड़ आने के कारण उसकी आँखों से अश्रुधाराएँ बहने लगी। उसने कहा, "हे दयासागर, सतगुरुनाथजी, आप

ने जल्द ही मेरी आप के चरणों से भेंट करायी। अब मुझ जैसे दीन मनुष्य को उद्धरने के लिए कुछ उपाय कीजिए।" सतगुरुजी ने कहा, "तुम यहीं रहो। प्रतिदिन वेदांत पर प्रवचन सुनते जाओ। उसके उपरांत, जो तुमने सुना है उसपर एकांत में जाकर अविरत मनन करो। जिससे तुम्हारे अंत:करण में आत्मज्ञान प्रकट होगा और तुम इस त्रिभुवन में धन्य हो जाओगे।" ऐसा कहकर सतगुरुजी ने शंकर के सिर पर अभयदान देने वाला हाथ रखा, तत्क्षण शंकर को ब्रह्मानंद की प्राप्ति हो गयी, झट से उसने सतगुरुजी को साष्टांग प्रणाम किया। प्रतिदिन सतगुरुजी के सन्निधान में बैठकर, उनके मुख से अव्दैत तत्वज्ञान का बोध सुनकर हर्षित होकर शंकर डोलता था। बोध सुनने के पश्चात वह एकांत में बैठकर उसपर चिंतन करता था। इस प्रकार प्रतिदिन श्रवण और मनन तथा लोगों के बीच होते हुए एकाग्रता से अविरत चिंतन (निदिध्यासन) करने के कारण उसने पूर्ण रूप से ज्ञान सोख लिया, उस ज्ञान का बयान मैं कैसे करुँ? उसको लगने लगा की चराचर से भरा यह जगत उसका (स्वयं का) अंग (रूप) है और जिसे देखते देखते गलकर वह पूर्ण रूप से दोषरहित तथा संग तथा विकाररहित होकर रह गया है। जहाँ केवल ज्ञान ही शेष है और अल्प मात्र भी व्दैत भाव नहीं है; वहाँ 'मैं, मेरा' यह भाव नहीं रहा, जो शेष रहा है वह केवल निरंतर तथा स्वाभाविक होने वाला ब्रह्मरूप। मैं हमेशा ऐसा ही था, व्दैत का मुझ से कभी संपर्क ही नहीं हुआ था। व्दैत का मुझ से क्या काम? यही मेरा सत्य स्वरूप है। यह आत्मरूप (यानी स्वरूप) ही निरंतर तथा प्रत्यक्ष है, वही जगत की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय का साक्षी होकर उस स्वरूप को प्राप्त करना (उससे एकरूप होना) इसी को मोक्ष कहते है। जहाँ बंधन (मनुष्य का मन ही सारे बंधनों की निर्मिती करता है) हैं, वहाँ मोक्ष नहीं हो सकता| मोक्ष में देहबुद्धि होना हास्यास्पद है, जहाँ व्दैत देखना मानो विनोद ही हो तथा काम क्रोध ये लज्जास्पद दुर्गुण हैं और विषयोपभोगों की आसक्ति की जहाँ भनक भी नहीं होती। मोक्ष पद प्राप्त किए हुए मनुष्यों को, जो कोई ईश्वर की प्रार्थना करते हैं वे सभी, स्वयं में (एकरूप हुए) ही दिखाई देते हैं; ईश्वर का स्तवन सुनते ही उन्हें अपनी ही स्तुति सुनाई पड़ रही हो ऐसा लगता है। कोई किसी कुत्ते को मारते हुए देखते ही, उन्हीं की मारपीट हो रही हो ऐसा लगता है तथा

मारने वाला भी स्वयं ही है, ऐसा लगता हैं। आत्मज्ञान प्राप्त होते ही आत्मज्ञानी व्यक्ति की ऐसी स्थिति होती है। इस प्रकार का अव्दैत ज्ञान शंकर को सतगुरु कृपा से प्राप्त हुआ, उसके पश्चात देहत्याग करके वह सतगुरुजी से एकरूप हो गया। एक पलभर के लिए सतगुरुजी की संगति मिलते ही शंकर का जीवन सार्थ हो गया और वह ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के मार्ग पर चलने लगा। उस संगति के प्रभाव से जीवनमुक्त स्थिति सहज में प्राप्त होती है।

अब इस कहानी का लक्ष्यार्थ सुनिए। शंकर एक मुमुक्षु होकर, आत्मज्ञान की खोज में निकल ने के पश्चात वह प्रपंच रूपी नदी में गिर गया। परंतु करुणाघन सतगुरुजी ने प्रपंच के प्रवाह में प्रकट होकर मुमुक्षु का हाथ थाम लिया और वे उसे परले किनारे ले गए। वैराग्य तथा विवेक इन दोनों को मुमुक्षु के दो पैर समझें। वे दोनों पैर विषयासक्ति का रोग होने के कारण निर्बल तथा विकल हो गए; सतगुरुजी ने वहाँ आकर बोध रूपी तेल लगाकर मालिश करके उसे आसक्ति से बचाया। सतगुरु महाराजजी ने स्वयं उसे विषयासक्ति से बचाकर 'ब्रह्मात्म भाव' (यानी ब्रह्म तथा आत्मा एक ही हैं इस प्रकार की भावना) की रेलगाड़ी में बिठाकर परमात्मा के पास पहुँचाया। परमात्मा को प्रत्यक्ष देखते ही मुमुक्षु को तत्काल ब्रह्म पद की प्राप्ति हुई और मुक्त होकर वह विदेही स्थिति में रहने लगा यानी उसने मोक्ष प्राप्ति कर ली। अस्तु। जिसका श्रवण करने से सभी पाप भस्म हो जाते हैं, ऐसे इस श्री सिद्धारूढ़ कथामृत का मधुर सा यह बयालीसवाँ अध्याय श्री शिवदास श्री सिद्धारूढ़ स्वामीजी के चरणों में अर्पण करते हैं। सबका कल्याण हो।

॥ श्री गुरुसिद्धारूढ़चरणारविंदार्पणमस्तु ॥